पूरे सोलह आने-भर

रमेश बक्षी

पूरे सोलह आने-भर

लेग मुझे देखकर कहते हैं कि इतना बड़ा गुनाह करने पर भी यह शान से चलता है। एकदम बेशर्म है, नाक काटकर सिर पर रख ली। इसकी जगह और कोई होता तो बेचारा कुएँ में डूब मरता; और मरता नहीं तो बरसों घर से बाहर ही नहीं निकलता।

https://www.hindiadda.com/pure-solah-aane-bhar/

पर मुझ पर कोई असर ही नहीं होता है, इन बातों का। मैं क्यों कुएँ में डूब मरूँ और क्यों अपना मुँह छिपाऊँ? मुझे आज अपनी उस जिंदगी से दुख होता है, जब मैं शर्मदार आदमी था, पानीदार आदमी था। कोई मेरे बाप पर उँगली उठाता था तो मैं चुप रहता था। कोई मेरी माँ को गाली दे देता था, तो मैं नम्रता से सुन लेता था। पर आज बड़ा भारी गुनाह करके मैंने शर्म के फटे-पुराने सारे कपड़े बेच दिये हैं और बेशर्मी की एक पतीली मोल ले ली है।

पहले अपना गुनाह बतला दूँ। मेरे दोस्त कहते हैं कि मैंने कॉलेज में प्रोफेसर को 'बेशर्म' कहा और चाँटा मारकर उसका अपमान किया। एक बात भूल गया। वह प्रोफेसर पुरूष नहीं था, औरत थी। और बस, श्रीमती प्रोफेसर को चाँटा मार देने के गुनाह में मुझे कॉलेज से निकाल दिया गया। लोग चाहते हैं कि मुझे शर्म आये इस बात पर। अपने इस काम से दुखी होकर मैं कुएँ में डूब मरूँ। पर मैं कहता हूँ कि श्रीमती प्रोफेसर को चाँटा मारने से पहले तक मेरी हालत एसी ही थी कि मुझे मर जाना चाहिए था, पर इस गुनाह के बाद, जब मैं बेशर्म हो गया हूँ, न आज मरूँगा, न कल मरूँगा।

बात पिछले साल की है। मैं बी.ए. में था। इंदौर के ही कॉलेज में पढ़ते तीन साल हो गये थे, सो सब मुझे जानते थे, सारे प्रोफेसरों से मेरी पहचान थी। यह एक आदत-सी रही थी मेरी कि खाली समय में इधर-उधर घूमने के बजाय किसी प्रोफेसर से बात करना मैं ठीक समझता था। इतनी बातों के बाद भी मुझे हमेशा अपने ऊपर खीझ आया करती थी। अपने तई मैं कसमसाया करता था, और उसका कारण थी मेरी गरीबी। फटे कपड़े पहनकर कॉलेज जाते मन में कुछ ऐसा-सा हो रहता था कि जरा-जरा छिपा रहना भला लगता था; क्योंकि कोई यह कहे, 'भिखमंगा है यह।' इसके पहले ही मैं उसकी आँख से ओझल हो जाना पसंद करता था। मेरे कहने का मतलब यह कि बात-बात पर मैं शर्म से गड़ जाता रहा हूँ। उन्हीं दिनों कॉलेज में श्रीमती प्रोफेसर नयी-नयी आयी थीं। मानता हूँ कि वे बहुत अच्छा पढ़ाती थीं। रोज-रोज उनके कपड़े नयी किस्म के होते थे। उनके हाथ के बैग महीने के तीसों दिन जुदा-जुदा रंग के होते थे। उनके सैंडिल सप्ताहों तक अलग-अलग तरह के होते थे। मैंने कई बार अपनी नोटबुक में उनके कपड़ों, बैगों ओर सैंडिलों का हिसाब लगाया है। मेरा ख्याल है, श्रीमती प्रोफेसर के कपड़े हों और पहनने वालियों की जगह मेरी दो दर्जन बहनें भी आ जायें, तो वे आराम से रह सकती हैं। मेरे विचार से उन्हें अपने 'मेक-अप' में रोज कम-से-कम ढाई घंटे तो लगते ही होंगे। इससे ज्यादा समय भी लग सकता है, मुझे नहीं मालूम, क्योंकि मैंने किसी को मेक-अप करते नहीं देखा और न मेरी माँ ने कभी मेक-अप किया, न मेरी बहन ने ही।

श्रीमती प्रोफेसर से मेरी अच्छी पहचान हो गयी। जब वे खाली समय में बैठी रहतीं, मैं उनसे साहित्य की बातें पूछा करता और उनके ठीक जवाबों से प्रभावित होता रहता। पहचान इतनी बढ़ी, ऐसी बढ़ी कि एक बार उन्होंने मुझे घर चलने को कहा।

फिर जैसे-तैसे पहचान बढ़ती गयी ओर मुझे अपनी तईं अधिक खीझ आने लगी। उनके सो तरह के कपड़े, पचास त हके सैंडिल और तीसों किस्म के बैग यह कहते थे कि मुझे अपनी गरीबी पर शर्म आनी चाहिए। और ऐसा हुआ भी। कोई सामने आ जाता और मेरी निगाह अपने ही फटे सैंडिलों पर पहुँच जाती, तो मेरा मन चाहता कि ये एकदम गायब हो जायें, तो अच्छा। पर न ऐसा कुछ हुआ, न होने को ही था और दिन-ब-दिन शर्म बढ़ती गयी। मुझे अपने रूखे बालों, मोटे कपड़ों, सड़ी कॉपियों से शर्म आती। मैं उन्हें छिपाने की कोशिश करता और जैसे-जैसे छिपाता जाता शर्म दुगुनी होती जाती।

एक दिन मैं नीचे बगीचे के पास खड़ा हुआ था, तभी श्रीमती प्रोफेसर सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आयीं। इधर-उधर सौ-दो-सौ लड़के खड़े थे। श्रीमती प्रोफेसर ने एक पैर आगे बढ़ाया कि उनके लाल सैंडिल की एक पट्टी टूट गयी। सैंडिल पैर से अलग रह गया। तभी उनका चेहरा एक अजीब किस्म की शर्म से लाल हो गया। उन्होंने नीचे झुककर पट्टी को ठीक करने की कोशिश की, पर वह ठीक न हो पायी। उनका पैर आगे बढ़ा कि सैंडिल फिर निकल गया। श्रीमती प्रोफेसर एक मिनट में पसीना-पसीना हो गयीं। सबसे बड़ी बात यह कि आस-पास खड़े हुए लड़के हँस रहे थे। उन्हें यही लगा होगा कि ये लोग क्या कहेंगे? परेशान हो गयीं, तो वह सैंडिल हाथ में उठाया और एक नंगे पैर से आगे बढ़ीं। तभी जाने क्या पैर में भी चुभ गया। वे तिलमिला गयीं। उनके चेहरे का रंग गहरे-से-गहरा होता गया। किसी तरह वे कमरे तक पहुँची और चपरासी को भेजकर सैंडिल ठीक करवाया।

मेरे देखते तो यह बात बहुत छोटे है। पट्टी टूट गयी, तो सैंडिल हाथ में उठाया और चले गये। इसमें शर्म की कौन-सी बात है? पर नहीं। कुछ देर बाद में मैं उनसे मिला तो वही बात वे ले बैठीं, 'मुझे अभी तक शर्म लग रही है। क्या सोचा होगा लड़कों ने? ...मुझे हाथ में सैंडिल उठाकर एक पैर में सैंडिल पहने और एक नंगे पैर से आना पड़ा। मैं बिलकुल 'कार्टून' की तरह लग रही होऊँगी।'

मैंने उन्हें बतलाया, 'इतनी ज्यादा सोचने की यह बात नहीं है।' पर वे नहीं मानी मेरी बात। उन्हें रह-रहकर यह बात याद आती थी और उनके कानों की लौर लाल से तेज लाल हो रही थी। मुझे यूँ लगा जैसे उस विचार-भर से उनकी धड़कनतेज हो रही थी। वे

बड़ी मुश्किल में अपने हाथ मल रही थीं। ऑफिस के हेडक्लर्क को अगर चपरासी की जगह काम दे दिया जाये, मुहल्ले के भले आदमी के घर अगर कोई डिग्री ले आये और घर के बरतन-भाँडे खुली सड़क पर नीलाम करने लगे और जाति के पंडितजी को भीड़ में गधे पर बैठाकर निकाला जाये, तो जिना अपमानित ये लोग अपने-आपको समझेंगे, उससे कहीं अधिक परेशानी श्रीमती प्रोफेसर महसूस कर रही थीं।

मैंने सोचा कि ऐसी छोटी-छोटी बातों पर अगर मुझे। शर्म आती, तो अभी तक मैं अधमरा हो गया होता। एक बार मेरे जूते ऐस खराब हो गये थे कि पहनने में ही चुभते थे, तो मैं उन्हें थैली में रखकर बाजार जाता और दूर से ही देख लेता कि वह लाल शर्टवाला आदमी पहचान का आ रहा है, तो जूते पहन लेता। यह तभी करता, जब आदमी जोरदार दिखता और बगैर जूते के उसके सामने जाने में मेरा अस्तित्व खतरे में पड़ने का अंदेशा होता। बातें कर उसे विदा कर देता। वह गया नहीं कि मैं जूते वापस थैली में रख लेता और आगे बढ़ जाता।

सीढ़ियों से कमरे की दूरी भी कोई मील-भर तो थी ही नहीं। ज्यादा-से-ज्यादा पंद्रह कदम होगी, पर श्रीमती प्रोफेसर मारे शर्म के गड़ी जा रही थीं।

उस दिन मैं घर पहुँचा तो बहन एक हाथ में अपनी चप्पलें दूसरे में किताब लिए दिखी। मैंने कहा, 'चप्पलें तो पहनने के लिए है, हाथ में रखने के लिए नहीं।'

'सो तो मालूम है! पर पट्टी टूट गयी है, रास्ते में ठीक कराकर स्कूल चली जाऊँगी।' वह बहुत ही सीधे ढंग से बोली।

'तुझे चप्पलें उठाकर ले जाते शर्म नहीं लगेगी?' यह प्रश्न मैंने तब किया, जब मुझे श्रीमती प्रोफेसर का उत्तर यादा आया।

'नहीं तो। अपनी चप्पलें उठाते काहें की शर्म लगे! लोग तो दूसरों का मैला सिर पर उठाकर ले जाते भी नहीं हिचकते। उनके मन में भी वैसा करने के लिए कोई बात नहीं उठती...।'

मेरी जबान बंद हो गयी। फिर भी बोला, 'मैंने इसलिए नहीं पूछा कि तुम्हें शर्म लगे या लगनी चाहिए।'

'तो फिर? हमें काहे की शरम?' वह जरा घमंड से बोली। बस मुझे इसी जगह वह नापंसद है। कभी-कभी तो अपनी कंगाली को ही एसी महत्ता समझ बैठती है कि दूसरों

को अपनी पगथली में अनजाने चिपक गये गोवर से अधिक कुछ गिनती ही नहीं और यह बात बतला जाती है कि वह कितनी हलकी है।

मैं बोला, 'बात ऐसी है कि हमारे कॉलेज की एक श्रीमती प्रोफेसर दस कदम अपना टूटा सैंडिल उठाकर चलने में ऐसी शर्मा गयीं कि कहते नहीं बनता।'

'होगी कोई बदचलन...' वह एकदम बोल दी।

'क्या बोली तुम?' मेरी आँखें चढ़ गयीं। मैं नहीं सहन कर सकता कि मेरी बहन इतनी हलकी हो कि श्रीमती प्रोफेसर को कोई बुरा शब्द कहे। मुझे उसके ये शब्द चुभ बैठे। बोला, 'थोड़ा-बहुत भी तमीज सीखा है?'

'सो तो सीखा है...' यह ये शब्द जरा गरमी से बोली।

'और सामने जवाब दे रही है।' मेरा गुस्सा और बढ़ गया। जोर से बोला, 'सुन उनके लिए ऐसा गंदा शब्द मुँह से निकालते तुझे शर्म आनी चाहिए।'

'पर जो जैसा होता है, उसे वैसा कहना...।'

'चुप रह अब', मैं जोर-से चीखा। मुझसे यह बात सहन नहीं हुई। मैंने उसको एक धौल जमा दिया। उसने मुँह बनाया पर वह मुझे बहुत ही नाराज देखकर बोली, 'गलती हुई!'

वह चली गयी। मैंने जब उसे दूर जाते और आँचल के कोने से आँसू पोंछते देखा तो मेरे मन ने प्रश्न किया, 'क्या वह कोई गलत बात बोली थी?' मेरा मन भले-बुरे होने की गुत्थियाँ सुलझाने लगा। मैं चुप खड़ा रहा। लगा कि उसको मैंने यूँ ही मार दिया। जब वह अनमनी-सी बहुत दूर दिखी तो मुझे पाँच बरस पहले का दिन याद हो आया। सारे शहर में उन दिनों हिंदू-मुसलमनों का दंगा मचा हुआ था। हम लोग बहुत परेशानी में थे, क्योंकि ऐसे मुहल्ले में बसते थे, जहाँ एक सिरे से सब दुश्मन-ही-दुश्मन थे। सुबह का समय था। दूर कहीं आग लगा दी गयी थी। उस समय बहन नहा रही थी। हल्ले-हल्ले में बीस कदम तक (जो श्रीमती प्रोफेसर के सैंडिल उठाकर चलने के पंद्रह कदमों से अधिक होते हैं) उसको नंगे बदन दौड़कर जान बचानी पड़ी थी। यह वही बहन है। उसमें ताकत है कि दुनिया की बुरी निगाहों से वह अपने को बचा ले। वह श्रीमती प्रोफेसर की तरह नहीं है जो बेबात के लिए शर्माये।

दूसरे दिन भी जब मैं श्रीमती प्रोफेसर से मिला, उन्होंने वही बात शुरू कर दी। कहने लगी, 'मुझे अभी तक शर्म लग रही है। क्या सोचा होगा लड़कों ने? मुझे हाथ में सैंडिल

उठाकर एक पैर में सैंडिल पहने और एक नंगे पैर से चलना पड़ा। मैं बिलकुल कार्टून की तरह लग रही होऊँगी।'

मुझे उनकी बात सुनकर और लाल होती लौर को देखकर बहन का वह रूप याद हो आया जब वह एक हाथ में किताबें और दूसरे हाथ में चप्पलें रखकर स्कूल जा रही थी। उसे कोई शर्म नहीं आ रही थी। यदि दोनों हाथों में दो थैलियाँ हों तो वह चप्पलों को सिर पर रख सकती है, उसे तब भी जरा-भर शर्म नहीं आयेगी।

'आप तो इतनी-सी बात में इतनी शर्म महसूस कर रही हैं।'

'करने की बात ही है।' वे बोलीं, 'यह तो अनहोनी है। मैं तो उस बात को सोचकर भी सिहर उठती हूँ।' यह बात सुनकर श्रीमती प्रोफेसर के लिए मेरे मन में कोई जगह नहीं रह गयी। जाने कैसे घृणा भर आयी सारे मन में। बोला, 'यह तो बहुत छोटी बात हुई मैंडम।'

'तो बड़ी बात क्या होगी, पर?' उसने साफ नाराजगी का व्यंग्य किया।

मैंने धीरे से कहा, 'मैं एक ऐसी लड़की को जानता हूँ, जिसे नंगे बदन भीड़ में बीस कदम दौड़ना पड़ा था। बताइये आप, कि उसे शर्म नहीं आयी होगी?"

'उँह!' श्रीमती प्रोफेसर हँसकर बोलीं, 'शी में बी सम प्रॉस।' (वह कोई वेश्या होगी)

बत सुनकर मैं उनकी तरफ देखता ही रह गया। मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था कि श्रीमती प्रोफेसर की जबान इस तरह हिलेगी। मुझे शब्द तीर की तरह चुभे। मैं तिलमिलाकर बोला, 'आप गलत कह रही है...'

'आई नो सच गर्ल्स' (मैं ऐसी लड़कियों को जानती हूँ) इस बात को कहते जब श्रीमती प्रोफेसर के चेहरे पर मुस्कान खिंच गयी, तो मन में आया कि अपने दोनों हाथों से नोंचकर इस मुस्कान की लकीरों के खींचकर, इसके चेहरे से अलग कर दूँ। मेरे लिए उनके सामने बैठना मुश्किल हो गया। ...बेशर्म कहीं की! मेरी बहन को 'प्रॉस' कह रही है यह। हमारे परिवार ने उन दिनों जो तकलीफें उठायी थीं, वे आजादी के लिए उठायी थीं और उसी बात के लिए यह कह रही है कि 'प्रॉस' होगी। ...मुझे ऐसा लग रहा था कि मेरा दिल एक लंबे कपड़े की तरह है और कोई तेज कैंची से उसके टुकड़े-टुकड़े कर रहा है। मुझे याद आया कि बहन, श्रीमती प्रोफेसर के लिए एक गंदा शब्द बोल गयी थी, तो मैंने उसे पीट दिया था और आज वही मेरी अपनी बहन को 'प्रॉस' कह गयी, फिर भी मैंने सुन लिया-चुपचाप सुन लिया, जवाब दिये बिना सुन लिया! कैसे सुन लिया? मैं

इस समय जिंदा भी हूँ या नहीं? क्या हो गया है मुझे? मैं तो बेशर्म होता जा रहा हूँ। मुझमें थोड़ी-बहुत शर्म तो होनी चाहिए। मैं वापस श्रीमती प्रोफेसर के सामने जा खड़ा हुआ। उसकी तरफ देखा, तो थूक देने को मन चाहा। सोचा, कुछ बोलूँ पर बोल न सका। वही बोली 'किस सोच में पड़ गये मिस्टर?'

मैंने थूक नीचे उतारा और चुप रहा।

'उस लड़की के बारे में सोच रहे है क्या?'

मैंने फिर थूक नीचे उतारा और बोला, 'हाँ'।'

'तुम भी...।'

मैं कड़वाहड से भरकर बोला, 'और भी कुछ कहना बाकी है उसके बारे में?'

वह नाखूनों वाली उँगलियों से अपने सिर के बालठीक करती हुई बोली, 'मैंने कह दिया, और मुझे परा भरोसा हो रहा है, वह कोई 'प्रॉस' ही होगी।'

मैंने न ऊपर देखा, न नीचे। जोर से एक चाँटा जमा दिया श्रीमती प्रोफेसर के गाल पर और बोला, 'बेशर्म कहीं की! वह लड़की प्रॉस नहीं पर तू...।'

लोगों ने मुझे धक्का देकर बाहर निकाल दिया। सच कहूँ, मेरे मन की कड़ाही में तेल जैसा कुछ खौल रहा था।

लोग मुझे देखकर कहते हैं कि तना बड़ा गुनाह करने पर भी, यह शान से चलता है। एकदम बेशर्म है, नाक काटकर सिर पर रख ली है। ...पर मुझ पर कोई असर नहीं होता इन बातों का! मुझे लगता है कि मैंने जो कुछ किया वह अच्छा किया। मैं बेशर्म हूँ, ऐसा होने से मुझे खुशी मिली है। मैं पक्का बेशर्म हूँ, पत्थर जैसा बेशर्म हूँ। एक, दो, चार आने नहीं, बेशर्म हूँ पूरे सोलह आने-भर।